Naveen Shodh Sansar (An International Refereed/ Peer Review Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 7.671
January to March 2024, E-Journal, Vol. I, Issue XLV

काव्य शास्त्रीय परम्परा में अलंकार की धारणाओं का संक्षिप्त विश्लेषण

डॉ. पी. एस. बघेल*

* ऐसोसिएट प्राध्यापक (संस्कृत) शहीद भीमा नायक, शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बड़वानी (म.प्र.) भारत

प्रस्तावना – कवि प्रतिभा से समद्भूत उक्तियो के अलोक सिद्ध सौंदर्य को कुछ आचार्यो ने व्यापक अर्थ में अलंकार कहा है। अर्थात् वामन ने अलंकार को सौंदर्य का पर्याय कहकर अलंकारयुक्त काव्य को ग्राह्य तथा अलंकारहीन या असुन्दर काव्य अग्राह्य कहा था।

'अलश्क्रियते/नेन इति अलंकार:'

भामह तथा उद्भट ने काव्य-शोभा के साधक धर्म को अलंकार माना है। गुण, रस को भी अलंकार की सीमा में रखा है। आचार्य दण्डी ने भी काव्य के शोभाकर धर्म को अलंकार कहा है।

'काव्यशोभाया: कर्तारो धर्मा गुणा: तदतिशहेतवास्त्वालंकार:।'

कुन्तक ने वक्रोक्ति के बारे में कहा है कि काव्य का अर्थात् शब्द और अर्थ का अलंकार कहा है।

'वक्रोक्तिरेव वैदग्धीभ्र भंगीभणति रूच्यते।'

भामह ने भी वक्रोक्ति या अतिशयोक्ति को अलंकार का प्राण तत्व माना था। रूय्यक के अनुसार'कवि-प्रतिभा से समुद्भूत कथन का प्रकार-विशेष ही अलंकार है।' आनन्दवर्धन का मानना है कि वाग्विकल्प अर्थात् कथन के अनूठे ढंग अनंत है और उनके प्रकार ही अलंकार कहलाते हैं।

काव्य में अलंकार का स्थान – भामह और उद्भट ने काव्य के शब्दार्थ को अलंकार्य मानकर उनमें सौंदर्य का आधान करने वाले सभी तत्वों को अलंकार कहा है। इससे स्पष्ट है कि भामह, उद्भट आदि अलंकार को काव्य सौंदर्य के लिए काव्य का अनिवार्य धर्म मानते थे। भामह ने काव्य के अलंकार को नारी के आभूषण की तरह मानकर कहा था। कि जैसे रमणिका सुन्दर मुख भी भूषण के अभाव में सुशोभित नहीं होता, उसी प्रकार अलंकारहीन काव्य सुशोभित नहीं होता।

इससे स्पष्ट है कि काव्य सौंदर्य के आवश्क उपादान मानने के कारण भामह अलंकार सम्प्रदाय के प्रवर्त्तक माने गये हैं। दण्डी ने भी अलंकार को काव्य सौन्दर्य का हेतु कहा है। दण्डि ने समाधि गुण को 'काव्य सर्ववस्व कहकर काव्य में गुण अपेक्षाकृत विशेष महत्व स्वीकार किया है।' पर गुण आदि की तुलना में उसका कम मूल्य मानते है मानते है। वामन ने 'रीति को काव्य की आत्मा माना है।' 'रीतिरात्मा काव्यस्य।'

आचार्य उद्भट अलंकार को गुण के समान ही महत्व देने के पक्षपाती है। उनकी मान्यता है कि गुण और अलंकार दोनों ही काव्य के समवाय-वृत्ति से सम्बद्ध काव्य का अंतरंग और अलंकार को संयोग-वृत्ति से सम्बद्ध काव्य का बहिरंग धर्म मानना गतानुगतिकता है।

भामह के सही काव्य का बाह्य तथा आभ्यन्तर धर्म मानने वाले दो मत प्रचलित थे। जिनका निर्देश भामह के काव्यालंकार में किया गया है। उद्भट का मत है कि अलंकार भी काव्य के सौन्दर्य के हेतु है। निष्कर्ष के रूप में उद्भट के अनुसार अलंकार काव्य के शब्द तथा अर्थ को सौन्दर्य प्रदान करने वाले नित्य और अन्तरंग धर्म है। अलंकार के अभाव में शब्द तथा अर्थ में सौन्दर्य नहीं आता।

जयदेव ने काव्य-लक्षण में अलंकार की अनिवार्य सत्ता मानी है।

'निर्दोषा लक्षणवती सरीतिर्गुणभभूषिता।
सालंकाररसानेक वृत्तिर्वाक् काव्य नाम भाक्।।'(जयदेव, चंद्रालोक, 1.7)

जयदेव आगे कहते हैं कि- अलंकारहीन शब्दार्थ को काव्य मानना-उष्णतारहित अग्नि की कल्पना करने के समान है।

'अंशीकरोति य: काव्यं शब्दार्थावनलकृति
असौ न मन्यते कस्मादनुष्णमनलंकृ ति।।'(जयदेव, चन्द्रालोक, 1.8)

कवि केशव ने अनलंकृति काव्य को अलंकारहीन रमणी की तरह असुन्दर माना है।

भामह ने वक्रोक्ति को अलंकार का प्राण कहा है।

'सैषा सर्वेव वक्रोक्तिरनायाऽनयाऽर्थो विभाव्यते।
यत्नोऽस्यां कविना कार्य: कोऽलंकारोऽना विना।।'

औचित्य चर्चा में क्षेमेन्द्र ने कहा है कि- उचित स्थान में अलंकार की योजना को काव्य सौन्दर्य में सहायक मानकर उसकी उपादेता स्वीकार की है।

आनंदवर्धन ने अलंकार की सार्थकता रस के प्रकाशन में ही है। रस की व्यंजना वाचर्थ से ही होती है।

आचार्य मम्मट ने अपने काव्य-लक्षण में शब्दार्थ का निर्दोष तथा गुणयुक्त होना तो आवश्यक माना है, पर अलंकार की काव्य में अनिवार्य स्थिति नहीं मानकर यह कहा कि कहीं कहीं स्थिति अनलङ्कृत शब्दार्थ भी काव्य होते हैं।

तददोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलकृति पुन: क्वापि।। (यमम्मट, काव्य प्र.1,कारिका पृ.4)

अलंकार के संबंध में मम्मट का दृष्टिकोण स्पष्ट है कि- शब्द और अर्थ काव्य-पुरूष के शरीर है, रस उसकी आत्मा है। और माधुर्य आदि रस के धर्म-काव्य-गुण-मानव के शौर्य आदि गुण की तरह उसके गुण हैं। अलंकार काव्य-पुरूष शरीर को शब्द और अर्थ को विभूषितभूषित करते हैं।

अत: वे मानव-शरीर के हार आदि आभूषण की तरह उसके अलंकार

है। इस प्रकार अलंकृत व्यक्ति की आत्मा का उपकार होता है, उसी प्रकार काव्य के अलंकार से काव्य का शब्दार्थ-रूप शरीर अलंकृत होकर उसकी आत्मा रस को उपकृत करता है।

'उपकुर्वन्ति तं सन्तंयेऽश्द्धारेण जातुचित्।
हारादिवदलंकारास्तेऽनुप्रासोपमायाद:।। (मम्मट,काव्य प्रकाश,8,67, पृ.189)

सौन्दर्य से पृथक् काव्य की कल्पना ही नहीं की जा सकती। इस तरह वह काव्य-सौन्दर्य अलंकार भी है और अलंकार्य भी है। काव्य के सभी सौन्दार्याधायक तत्व इस अर्थ में अलंकार है। पर विशिष्ट अर्थ में वामन ने अलंकारों को काव्य की स्वाभाविक शोभा की वृद्धि हेतु कहा है। उनके अनुसार रीति या विशेष प्रकार की पद-संघटना काव्य सर्वस्व है।

'रीतिरात्माकाव्यस्य।' (काव्यालकारसूत्रवृत्ति, 1,2,6)

भारतीय अलंकार शास्त्र के आचार्य ने अलंकार और अलङ्कार्य के इस अविच्छेद्यय संबंधों को पूर्व में ही समझा था। अलंकार्य (शब्द, अर्थ, रस, या ध्वनि) से उसके अविभाज्यसंबंध की धारणा निहित थी।

भामह, दण्डी, वामन आदि आचार्यों ने भी उपमा आदि विशेष अलंकारों का गुण आदि से भेद निरूपण कर पुन: सभी काव्यतत्वो को सामाान्य रूप से काव्य का अलंकार या सौन्दर्य कहकर सबकी तात्विक अभिन्नता स्वीकार करली है।

आठवीं शताब्दी ई. में अपभ्रंश के कवि स्वंयभू ने हरिवंशपुराण और पउमचरिउ में दण्डी का आचार्य के रूप में ससमादर उल्लेख किया है।

आचार्य दण्डी विरचित काव्यादर्श – काव्यादर्श में तीन परिच्छेद हैं जिनमें कुल 660 श्लोक हैं। तृतीय परिच्छेद 'वराह-वर्णन' है। वराह प्रतिमा लगभग 400 ई. से साम्य रखता है।

वामन के रीतिसिद्धान्त पर दण्डी का स्पष्ट प्रभाव दृष्टिगोचर होता है।

दण्डी के प्रथम परिच्छेद में काव्य के लक्षण तथा गद्य, पद्य और मिश्रित तीन रूपों का विभाजन किया है। साथ ही सर्गबंध के लक्षण दिये गये है। साहित्य में वैदर्भी तथा गौड़ी शैली की चर्चा की गई है। कवि के तीन आवश्यक गुण-प्रतिभा-श्रुति और अभियोग की चर्चा की गई है।

द्वितीय परिच्छेद में अलंकार शब्द की व्याख्या दी है। जिनमें 35 अलंकार गिनाये है। तृतीय परिच्छेद में यमक का विशद वर्णन है।

दण्डी का काव्यादर्श अंशत: रीति सम्प्रदाय के समर्थक है और अंशत: अलंकार सम्प्रदाय का। अनुमान किया जाता है कि दण्डी की रचना किसी सुखार्थीराजकुमार के लिए की थी। किन्तु इसे अनुमान तक मानना उचित समझा है।

काव्यादर्श की शैली सरल और सारगर्भित हैं। जहाँ तक कवित्व का प्रश्न है भामह की तुलना में दण्डी का स्थान ऊँचा है। किन्तु विशद एवं तर्क संगत विवेचन में भामह दण्डी से आगे है। दण्डी के उदाहरण मौलिक हैं।

दण्डी को प्राकृतों का ज्ञान नहीं था। उन्होंने महाराष्ट्री, शौरसेनी, गौड़ी तथा लाटी का विभिन्न प्राकृतों रूपों का उल्लेख मात्र किया है।

काव्यादर्श में दण्डी ने पद्यबद्ध रचना में लम्बे समासों का निषेध किया है। किसी समय दण्डी परिवार ने गुजरात के आनंदपुर के प्रस्थान कर के आचलपुर (वर्तमान में एलिचपुर) (बरार प्रान्त में) निवास किया। उनके पूर्वज दामोदर स्वामी भारवि के कहने पर विष्णुवर्धन के साथ मित्रता स्थापित की है।

दण्डी तथा भामह दोनों के साथ कुछ पाठ अक्षरश: मिलते हैं। यथा-

1. सर्गबन्धो महाकाव्य में काव्यादर्श (114), काव्यालंकार के 1,19 में (ख) मन्त्रदूत प्राणजिनै- काव्यादर्श- (1,17)

भामह और दण्डी ने लिखा है।

भामह और दण्डी दोनों ही प्राचीन आलंकारिक हैं।

भामह ने सर्वप्रथम व्याकरण के आधार पर उपमा का प्रतिपादन किया है। अत: कुछ तथ्यों के आधार पर दण्डी से पहले भामह हुए। संभवत: भामह और दण्डी भिन्न-भिन्न परम्पराओं के समर्थक रहे होंगे। दण्डी ने भरत की परम्पराओं का अनुसरण किया है और भामह ने अर्थालंकारों का प्रमुखता देने की परम्परा का परिवहन किया है।

भामह ने अनेकत्र पूर्ववर्ती आचार्यों के सिद्धान्तों का नाम निर्देशन किया है। ऐसे कतिपय ऐसे सिद्धान्तों की स्थापना काव्यादर्श (दंडी) में प्राप्त होती है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. सौन्दर्मलंकार वामन, काव्यालंकारसूत्रवृत्ति 1,1,2
2. काव्यालंकार सूत्रवृत्ति, 1,1,1
3. वामन-काव्यालंकार सूत्र वृत्ति,3,1,1
4. कुन्तक वक्रोक्ति जीवित्- 1,10
5. अभिधाप्रकार-विशेषांक एवानलंकार रूय्यक-अलंकार सर्वस्व, पृष्ठ.8
6. चाललंकार आनंदवर्धन, ध्वयालोक लोचन 3.37 की वृत्ति, पृ.511
7. न कान्तमपि निर्भूषं विभाति वनितामुख-भामह- काव्यालंकार 1,13
8. काव्यशोभाकरान् धर्मानलंकार-दण्डी-काव्यादर्श, 2.1
9. तदेतत्काव्यसर्वस्व समाधिर्ना गुण: काव्यदर्श 1,100
10. जदेव, चंद्रालोक, 1.7
11. जदेव, चंद्रालोका 1.8
12. केशव, कविप्रिया, पृ.47
13. भामह, काव्यालंकार, 285
14. मम्मट, काव्यप्र.1, कारिका 1, पृ.4
15. मम्मट, काव्य प्रकाश, 8,6,7, पृ.189
16. काव्यालंकार-सूत्र वृत्ति, 1,2,6
17. राहुल सांकृतन (संपादन), हिन्दी काव्यधारा पृ.22

****